इकाई 14: त्रिपुरा की लोक-संस्कृति का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा:

14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 जनजातीय स्थिति
14.4 लोक-विश्वास
14.5 लोक पर्व-उत्सव
14.6 लोकाचार एवं अंधविश्वास
14.7 खान-पान
14.8 जनजातीय समाज की ज्ञान-परंपरा
14.9 समाज व्यवस्था
14.10 सारांश
14.11 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)
14.12 अधिक जानने के लिए पढ़े
14.13 अभ्यास प्रश्न

14.1 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययन से अध्येता—

- त्रिपुरा के जनजातीय स्थिति के बारे में जान सकेंगे।
- वहाँ के लोक जीवन और उनके साहित्य के बारे में जान पाएंगे।
- त्रिपुरा के लोगों की समाज व्यवस्था से आप परिचित हो पाएंगे।
- वहाँ के रीति-रिवाज, लोकाचार और और प्रचलित अंधविश्वास से भी अवगत हो पाएंगे।
- इसके अतिरिक्त इस इकाई से त्रिपुरा के खान-पान और वहाँ प्रचलित विभिन्न उत्सव-पर्वों से भी परिचित हो पाएंगे।

14.2 प्रस्तावना:

भारत के पूर्वोत्तर में स्थित त्रिपुरा एक ऐसा राज्य है, जहाँ प्रकृति की शांतिमयी गोद और जातीय-जनजातीय-सांस्कृतिकविविधता मिलकर एक अद्वितीय जीवन-संस्कृति

का निर्माण करते हैं। घने वनों, लहराते आठारोमुड़ा, लंगतराई, बड़मुड़ा पहाड़ियों और पवित्र गोमती, खोवाई, धलाई, मनु, जूरी आदि नदियों की स्वच्छ निर्मल जलधाराओं के बीच बसे इस प्रदेश की पहचान केवल उसकी भौगोलिक सुंदरता नहीं,बल्कि उसकी लोकपरंपराओं और सामुदायिक संस्कृति की उज्ज्वल निरंतरता है।

त्रिपुरा की लोक-संस्कृति में लोकविश्वास, लोकाचार, पर्व-उत्सव, लोकनृत्य, लोकगीत, हस्तशिल्प, पारंपरिक खान-पान तथा सामुदायिक जीवन के विविध स्वरूप विद्यमान हैं। गरिया पूजा, केर पूजा और खार्ची पूजा जैसे पर्व जनजातीय धार्मिक आस्थाओं तथा सामाजिक एकता के प्रतीक हैं। इसी प्रकार होजागिरी और लेबांग बूमानी जैसे लोकनृत्य राज्य की सांस्कृतिक जीवंतता को अभिव्यक्त करते हैं। लोककथाएँ, मिथक और मौखिक परंपराएँ जनजातीय समाज के इतिहास, ज्ञान और अनुभवों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य करती हैं।

यहाँ के जनजातीय समाज में व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय को अधिक महत्व दिया जाता है तथा सामाजिक जीवन सहयोग, सहभागिता और पारस्परिक सम्मान पर आधारित होता है। पारंपरिक सामाजिक संस्थाएँ, रीति-रिवाज और सांस्कृतिक अनुष्ठान समाज में एकता तथा सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आधुनिकता, शहरीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव से त्रिपुरा की लोक-संस्कृति में अनेक परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। बावजूद इसके जनजातीय समुदाय अपनी सांस्कृतिक विरासत, भाषाओं, लोककलाओं और परंपराओं को संरक्षित रखने का सतत प्रयास कर रहे हैं। त्रिपुरा की लोक-संस्कृति का अध्ययन केवल सांस्कृतिक परंपराओं के परिचय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राज्य की सामाजिक संरचना, ऐतिहासिक विकास और सांस्कृतिक पहचान को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम भी है।

त्रिपुरा का सांस्कृतिक संसार मूलतः समन्वय की संस्कृति है, जहाँ जनजातीय परंपराएँ, बांग्ला लोकसंस्कृति, प्रकृति-पूजा और विविध धार्मिक प्रभाव एक-दूसरे में घुलकर सदियों से एक बहुरंगी सांस्कृतिक परंपरा का निर्माण करते आए हैं। इसी कारण त्रिपुरा केवल एक राज्य नहीं, बल्कि परंपरा, लोकआस्था और सामुदायिक जीवन का सजीव उत्सव है। यहाँ धान के खेतों, झीलों, नदियों और हरी-भरी बस्तियों से युक्त मैदानों में कहीं 'रवींद्र संगीत', 'नज़रुल गीती' तो कहीं सचिन देबबर्मन की मधुर धुनें जीवन और समाज में रंग भर देती हैं। इस प्रक्रिया को माणिक्य वंश के राजाओं द्वारा अपनाई गई संस्कृति की उदारता और विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं के उनके उदार

समर्थन ने गति प्रदान की है, जिन्होंनेपाँच शताब्दियों से भी अधिक समय तक राज्य पर शासन किया।

प्रस्तुत इकाई में त्रिपुरा की लोक-संस्कृति के प्रमुख आयामोंजनजातीय स्थिति, लोकविश्वास, लोक पर्व-उत्सव, लोकाचार एवं अंधविश्वास, खान-पान तथा समाज-व्यवस्थाका विवेचन किया जाएगा, जिससे विद्यार्थियों को राज्य की समृद्ध लोक-सांस्कृतिक विरासत का समग्र परिचय प्राप्त हो सके।

14.3 जनजातीय स्थिति

त्रिपुरा की लोक-संस्कृति को समझने के लिए यहाँ की जनजातीय स्थिति का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि राज्य की सांस्कृतिक पहचान का मूल आधार इसकी जनजातीय परंपराएँ हैं। त्रिपुरा पूर्वोत्तर भारत का एक ऐसा राज्य है जहाँ अनेक जनजातीय समुदाय प्राचीन काल से निवास करते आए हैं। इन समुदायों ने अपने विशिष्ट सामाजिक संगठन, भाषा, धर्म, लोकविश्वास, रीति-रिवाज तथा सांस्कृतिक परंपराओं के माध्यम से राज्य की लोक-संस्कृति को समृद्ध बनाया है।

त्रिपुरा की जनजातियों में त्रिपुरी (देबबर्मा एवं त्रिपुरा), रियांग (ब्रू), जमातिया, नोवातिया, मुरासिंह, हालाम, उचई, मोग, चाकमा आदि प्रमुख हैं। इनमें त्रिपुरी, जमातिया, रियांग और चाकमा जनसंख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण जनजातियाँ हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान है, जो उनके लोकगीतों, लोकनृत्यों, पारंपरिक वेशभूषा, आभूषणों और सामाजिक संस्थाओं में दिखाई देती है।

त्रिपुरी जनजाति को राज्य की सबसे बड़ी जनजाति माना जाता है। इनकी भाषा कॉकबरक है, जो त्रिपुरा की प्रमुख जनजातीय भाषा है। त्रिपुरी समाज में केर पूजा और खार्ची पूजा जैसे धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्सवों का विशेष महत्व है। गरिया नृत्य और लेबांग बूमानी जैसे लोकनृत्य उनकी सांस्कृतिक समृद्धि के प्रतीक हैं।

जमातिया समुदाय अपनी अनुशासित सामाजिक व्यवस्था और सामुदायिक संगठन के लिए प्रसिद्ध है। जमातिया समाज में 'हदा' नामक पारंपरिक सामाजिक संस्था महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो सामाजिक नियमों एवं सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण का कार्य करती है। इस जनजाति के धार्मिक अनुष्ठानों, विवाह संस्कारों और सामुदायिक पर्वों में सामूहिक सहभागिता विशेष रूप से देखने को मिलती है।गरिया पूजा जमातिया जनजाति की पहचान माना जाता है।

रियांग अथवा ब्रू जनजाति अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं और लोककलाओं के लिए प्रसिद्ध है। होजागिरी नृत्य रियांग समुदाय की पहचान माना जाता है, जिसे भारत के प्रमुख लोकनृत्यों में स्थान प्राप्त है। इस नृत्य में युवतियाँ संतुलन और लयात्मकता का अद्भुत प्रदर्शन करती हैं। रियांग समुदाय के लोकगीतों और लोककथाओं में उनके जीवन-संघर्ष, प्रकृति-प्रेम तथा सामाजिक अनुभवों का सजीव चित्रण मिलता है।

चाकमा त्रिपुरा की प्रमुख जनजातियों में से एक है, जिसकी पहचान बौद्ध धर्म, विशिष्ट भाषा और समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं से निर्मित होती है। यह समुदाय मुख्यतः राज्य के उत्तरी एवं पूर्वी क्षेत्रों में निवास करता है। 'बिजू' इनका प्रमुख लोकपर्व है, जिसे नववर्ष के रूप में उत्साहपूर्वक मनाया जाता है। अपनी भाषा, संस्कृति और धार्मिक परंपराओं के संरक्षण के माध्यम से चाकमा जनजाति त्रिपुरा की लोक-सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध बनाती है।

त्रिपुरा की अधिकांश जनजातियाँ परंपरागत रूप से कृषि पर आधारित रही हैं। झूम खेती (स्थानांतरित कृषि) लंबे समय तक उनकी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार रही है। कृषि कार्यों से जुड़े अनेक लोकगीत, पर्व और अनुष्ठान आज भी जनजातीय जीवन का अभिन्न अंग हैं। उदाहरणस्वरूप, गरिया पूजा मुख्यतः कृषि समृद्धि और अच्छी फसल की कामना से संबंधित है।

जनजातीय समाज में प्रकृति के प्रति गहरा सम्मान दिखाई देता है। पर्वत, वन, नदियाँ और विभिन्न प्राकृतिक शक्तियाँ उनके धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का हिस्सा हैं। यही कारण है कि उनकी लोककथाओं, मिथकों और धार्मिक मान्यताओं में प्रकृति का विशेष स्थान है। यह प्रकृति-केंद्रित दृष्टिकोण त्रिपुरा की लोक-संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं में से एक है।

आधुनिक शिक्षा, शहरीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव से जनजातीय जीवन में अनेक परिवर्तन आए हैं। पारंपरिक जीवन-शैली, वेशभूषा और भाषाई व्यवहार में बदलाव देखने को मिलता है। इसके बावजूद विभिन्न जनजातीय समुदाय अपने पर्व-उत्सवों, लोककलाओं और सांस्कृतिक परंपराओं के माध्यम से अपनी पहचान को सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहे हैं। त्रिपुरा जनजातीय क्षेत्र स्वायत्त जिला परिषद (TTAADC) तथा विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाएँ भी जनजातीय संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

14.4 लोक-विश्वास

लोकविश्वास किसी समाज की सामूहिक चेतना, अनुभवों और परंपरागत ज्ञान का अभिन्न अंग होते हैं। ये विश्वास पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपरा के माध्यम से हस्तांतरित होते रहते हैं और समाज के धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करते हैं। त्रिपुरा की लोक-संस्कृति में लोकविश्वासों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ की जनजातीय एवं गैर-जनजातीय समुदायों के जीवन में प्रकृति, पूर्वजों, देवी-देवताओं तथा अदृश्य शक्तियों के प्रति गहरी आस्था देखने को मिलती है। ये विश्वास केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि दैनिक जीवन, कृषि, स्वास्थ्य, सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक व्यवहारों को भी प्रभावित करते हैं।

त्रिपुरा के जनजातीय समाज का जीवन प्रकृति के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। इसलिए यहाँ के लोकविश्वासों में प्रकृति-पूजा का विशेष महत्व है। अनेक जनजातीय समुदायों का विश्वास है कि पर्वतों, नदियों, जंगलों, वृक्षों तथा अन्य प्राकृतिक तत्वों में दैवी शक्तियों का निवास होता है। वे प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन नहीं मानते, बल्कि उसे जीवनदाता और संरक्षक के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि विभिन्न पर्वों और धार्मिक अवसरों पर प्रकृति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की जाती है। उदाहरण के लिएजमातिया जनजाति द्वारा गरिया पूजा से पूर्व भूमि पूजा, नदी पूजा, वन पूजा संपन्न की जाती है, साथ ही गरिया पूजा के दौरान अच्छी फसल, पशुधन की वृद्धि और सामुदायिक समृद्धि की कामना की जाती है।

देवी-देवताओं और स्थानीय संरक्षक शक्तियों से संबंधित विश्वास भी त्रिपुरा के लोकजीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रत्येक जनजातीय समुदाय में कुछ विशेष देवताओं की पूजा की जाती है, जिनका संबंध कृषि, स्वास्थ्य, सुरक्षा और समृद्धि से माना जाता है, जैसे- जमातिया समुदाय में गरिया देवता को कृषि और समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार केर पूजा में (त्रिपुरी, जमातिया, रियांग) समाज की रक्षा के लिए विशेष अनुष्ठान संपन्न किए जाते हैं। इन धार्मिक मान्यताओं के माध्यम से सामुदायिक एकता और सामाजिक अनुशासन को भी बल मिलता है।

त्रिपुरा के लोकविश्वासों में शुभ और अशुभ संकेतों की मान्यताएँ भी व्यापक रूप से प्रचलित रही हैं। यात्रा, विवाह, कृषि कार्य अथवा किसी महत्वपूर्ण कार्य के आरंभ से पहले विभिन्न संकेतों को देखा जाता है। कुछ पक्षियों की आवाज़, पशुओं की गतिविधियाँ अथवा प्राकृतिक घटनाओं को शुभ या अशुभ माना जाता है। यद्यपि

आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से इन मान्यताओं का महत्व कम हुआ है, फिर भी ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में इनके अवशेष आज भी दिखाई देते हैं।

रोगों और स्वास्थ्य से संबंधित लोकविश्वास भी त्रिपुरा की लोक-संस्कृति का हिस्सा रहे हैं। परंपरागत समाज में अनेक बीमारियों को दैवी अथवा अलौकिक शक्तियों से संबंधित माना जाता था। इसलिए औषधीय पौधों के उपयोग के साथ-साथ धार्मिक अनुष्ठानों और मंत्रोच्चारण का भी सहारा लिया जाता था। जनजातीय समुदायों में स्थानीय वैद्य, ओझा अथवा पारंपरिक उपचारक समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। यद्यपि आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं के प्रसार से इन प्रथाओं का प्रभाव कम हुआ है, फिर भी पारंपरिक ज्ञान आज भी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में संरक्षित है।

लोककथाएँ, मिथक और दंतकथाएँ भी लोकविश्वासों के निर्माण और संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। त्रिपुरा की विभिन्न जनजातियों में सृष्टि की उत्पत्ति, देवताओं के कार्यों, वीर पुरुषों और अलौकिक घटनाओं से संबंधित अनेक लोककथाएँ (चौदह देवता, गरिया आचाइमानि कथमा, फते बाई रांगिया, राई कोचाक एवं राई कसम आदि) प्रचलित हैं। ये कथाएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों, नैतिक शिक्षाओं और सामुदायिक स्मृतियों को संरक्षित रखने का माध्यम भी हैं।

वर्तमान समय में लोकविश्वासों को केवल अंधविश्वास के रूप में नहीं देखा जाता, बल्कि उन्हें समाज की सांस्कृतिक विरासत और ऐतिहासिक अनुभवों के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में भी समझा जाता है।

इस प्रकार त्रिपुरा के लोकविश्वास प्रकृति, धर्म, पूर्वजों, सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक परंपराओं के समन्वित स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। ये विश्वास न केवल लोकजीवन को दिशा प्रदान करते हैं, बल्कि त्रिपुरा की लोक-संस्कृति की विशिष्ट पहचान को भी संरक्षित रखते हैं।

14.5 लोक पर्व-उत्सव

त्रिपुरा की जनजातियों की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत समृद्ध है, जोपीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। जनजातीय रीति-रिवाज, मान्यताएँ और प्रथाएँ, पर्व-त्योहार, एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत कानिर्माण करते हैं जो अपनी स्वदेशी परंपराओं का त्याग किए बिना भारतीय संस्कृति केअभिन्न अंग के रूप में जीवित रही है। त्रिपुरा में मनाए जाने वाले पर्व-त्योहार एकसुदृढ़ और समग्र सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक हैं। चाहे वह जनजातीय पर्व-त्योहारहो या गैर-जनजातीय, दोनों ही समाज जिस उत्साह और जोश के

साथपर्व-त्योहार मनाते हैं, वह अद्वितीय है। त्रिपुरा की जनजातियों के प्रमुख त्योहारों में खार्ची पूजा, गरिया पूजा, केर पूजा, बिज़ू,सांग्राइन, लांप्रा पूजा आदि शामिल हैं।

खार्ची पूजा:

त्रिपुरा के देबबर्मा समुदाय (त्रिपुरी) द्वारा मनाया जाने वाला प्रसिद्धजनजातीय लोकोत्सव है। इसमें चौदह देवताओं (शिव, दुर्गा, विष्णु,लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिक,गणेश, ब्रह्मा, अखाता,बिखाता, थुनाइरक, बनेरक,संग्रोमा, और मोताई कतर/गरिया) की पूजा सात दिनों तक की जाती है। इस पर्व को खार्ची पूजा के नाम से भीजाना जाता है। जो पुराने अगरतला के चतुर्दश देवता मंदिर में मनाया जाता है। पूजा से पहले देवताओं को साइद्रा नदी के पवित्र जल सेस्नान कराया जाता है। उसके बाद उन्हें फूलों से सजाया जाता है। और विभिन्न प्रकारके प्रसाद चढ़ाए जाते हैं। यह त्योहार लोगों में एकता और भाईचारे की भावना कोबढ़ावा देता है, पूजा के दौरान पुजारी द्वारा समाज व राज्यकी समृद्धि के लिए कामना की जाती है। यह पूजा न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक है, बल्कि सामूहिक मेलजोलऔर लोकनृत्य-गीत का अवसर भी है। जिससे त्रिपुरा में एकता औरभाईचारा बढ़ता है।

गरिया पूजा:

जमातियाजनजाति में गरिया-पूजा साल की सबसे बड़ी पूजा होती है। गरिया पूजा से पूर्व वन, नदी, माँत्रिपुरेशवरी, महादेवआदि और प्रत्येक जमातिया गाँव में केर पूजासंपन्न करना आवश्यक माना जाता है। इन पुजाओं में सुख-समृद्धि की आकांक्षा के साथमुख्यत: यह प्रार्थना की जाती है कि आने वाली बाबा की पूजा बिना किसी व्यवधान केसम्पन्न हो। तब जाकर बाबा गरिया की पूजा का दिन आता है। बाबागरिया की पूजा से ठीक सात दिन पहले खेरफांग (मुख्य पुजारी में से एक, जिसके घरमें बाबा का मुखौटा एवं पूजा सामग्री आदि रखे जाते हैं) के आंगन में लांप्रा(भूमि) पूजा कर चुकबार (देशी शराब) बनाई जाती है। लोक में इस दिन कोचुकबार-सुङमानी कहा जाता है। गरिया पूजा के दौरान सबसे पहले चढ़ावे के रूप मेंबाबा को चुकबार का भोग लगाया जाता है। चुकबार सुङमानी के दिन पहली बार दरियाद्वारा ढोल/नगाड़ा बजाया जाता है। जमातिया जनजाति इसी दिन से बाबा की पूजा काशुभारम्भ मानती है। यह ढोल/नगाड़ा पूजा के सात दिन पहले बजाया जाता है, तबसे लेकरबाबा के विसर्जन के दिन तक लगातार बजाया जाता है।

बाबागरिया की पूजा के दौरान उनकी भक्ति,श्रद्धा आदि में सुवारीऔर बगलाद्वारा गाए जाने वाले लोकगीत जहाँ जमातिया जनजाति के सभ्यता की कहानी, सामाजिकसंरचना, रहन-सहन, खान-पान, पहनावा आदि को बताता है, वहीं उनके रीति-रिवाज,सांस्कृतिक उत्थान, जीवन मूल्यों को भी उजागर करता है। बाबा की अभ्यर्थना में गाएजाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं– ढोल-नगाड़ों से धरती को कंपाते हुए/अपनेआने की पद-ध्वनि चारों ओर गुंजाते हुए/हर ओर बस अपने आने की ध्वनि करते हुए/बादलोंको बगलाबनाते हुए/पहाड़ों-पर्वतों में प्राण फूँकते हुए/आप पधारे हैं बाबा/...आसमान सेधरती तक खूबसूरती/चारों ओर सुहानी छटा आप लाए हो/युवा बादलों को बेसुध बनाते हुए/स्वर्ण-किरणोंकी बारिश करते हुए/आप पधारे हैं बाबा...

त्रिपुरामें जमातिया समुदाय के दोनों अकराओं (समाजपति) के निर्देशन में दो जगहों पर गरियापूजा की जाती है। दोनों गरिया देवताओं के अलग-अलग नाम हैं- बिया गोनांग और बियाकोरोई। दोनों की पूजा एक साथ एक ही पद्धति से, परन्तु अलग-अलग स्थानों पर की जातीहै,हाँलाकि ग्राम-परिक्रमा केवल 'बिया गोनांग बाबा गरिया' कीही होती है। बाबा की मुख्य पूजा अंतिम चैत्र के दिन की जाती है। जिसे जमातिया में 'महाबुइसू'कहा जाता है। महाबुइसू से पहले वाले दिन को 'हारिबुइसू' कहते हैं। इस दिन यानीहारिबुइसू से लेकर वैशाख के छठे दिन तक इस स्मुदाय के लिए अन्य देवी-देवताओं कीपूजा करना मना है। आशय यह है कि जमातिया जनजाति के लिए बाबा गरिया ही सब-कुछ हैं,यानी गाँरिया ही वेद-पुराण हैं, तीर्थ और वही तीनों लोकों के स्वामी हैं। दूसरेशब्दों में गरिया पूजा जमातिया जनजाति का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्रबिन्दु है।

जमातिया जनजातिके अलावा त्रिपुरा के अन्य जनजाति समुदायों, जैसे रियांग, देबबर्मा और त्रिपुरा केद्वारा भी बाबा गरिया की पूजा की जाती है। उदाहरण के लिए रियांग जनजाति भाला मेंरिसा बाँधकर बाबा गरिया के प्रतीक बनाते हैं। रियांग में यह पूजा तीन दिनों तकमनाया जाता है। पूजा के बाद वे अपने गाँव के प्रत्येक सनातनी परिवारों में जाकरगरिया नृत्य करते हैं।देबबर्मा और त्रिपुरा जनजाति में बाँसकी चोटी या ऊपरी हिस्से में रिसा बाँधकर बाबा गाँरिया का प्रतीक बनाया जाता है।देबबर्मा समुदाय में यह पूजा कहीं एक दिन तो कहीं तीन दिनों तक मनाया जाता है।वहीं त्रिपुरा समुदाय में यह पूजा किसी गाँव में तीन दिन तो कहीं सात दिन तक मनायाजाता है। पूजा के दौरान वे घर-घर जाकर गरिया नृत्य भी करते हैं।

होजागिरी/होजाईगिरी उत्सव

यह पूजा मुख्यत: त्रिपुरा की प्रमुख जनजातियों(कॉकबरक भाषी समुदाय, यथा- देबबर्मा, रियांग, जमातिया, कलई, मुरासिंह, नोवातियाएवं उचई) द्वारा फसल कटाई के बाद मायलुमा-खुलूमा (धान और कपास की देवी) को प्रसन्नकरने के लिए की जाती है। जिसे लक्ष्मी पूजा के नाम से भी जाना जाता है, यह दुर्गा पूजा के बादपूर्णिमा की रात को की जाती है। स्थानीय भाषा में इस पर्व को होजागिरी/होजाईगिरीआदि कहा जाता है। यह लक्ष्मी की पूजा करने और अच्छी फसल का जश्न मनानेका एक तरीका है। इसके अतिरिक्त रियांग समुदाय द्वारा इस पर्व को सामूहिक रूप से लक्ष्मीपूजा के 3 से 5 दिनबाद सांस्कृतिक लोकोत्सव के रूप में भी मनाया जाता है। जिसमें वे पारंपरिक लोक नृत्यों का प्रदर्शन करतेहैं। इस अद्भुत नृत्य में युवतियाँ अपने अविश्वसनीय संतुलन का प्रदर्शन करते हुएमिट्टी के घड़े, लैंप और बोतल जैसी कई वस्तुओं को अपने सिर पर संतुलित करते हैं, जबकि शरीर का केवल निचला हिस्सा (कमर) ही हिलता है। इसे ही होजागिरी नृत्य कहा जाता है। पुरुष खाम और सुमुई (ढोलक एवं बाँसुरी) के गीतात्मक गायन और वादन में भाग लेतेहैं। यह नृत्य संतुलन कृषि जीवन की कठिनाइयों और सामंजस्यका प्रतीक है।सांस्कृतिक उत्सव के दौरान सामुदायिकभोज, लोकगीत-संगीत,लोकनृत्यों और खेलों का आयोजन भी किया जाता है, जो सामुदायिकएकता को सुदृढ़ करता है। रियांग समुदाय में होजागिरी एवं गरिया के अतिरिक्तसंग्रोंमा नामक कुल देवी की भी पूजा की जाती है

लांप्रा पूजा:

त्रिपुराके जनजातीय समुदाय (विशेषकर देबबर्मा, रियांग, जमातिया, त्रिपुरा, नोवातिया, उचई,कलई, रुपिनी एवं मुरासिंह) में लांप्रा पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह दो प्रकारके होते हैं- कोथार लांप्रा[1]और कुसूं लांप्रा[2]अर्थात जन्म से लेकर मृत्यु और मृत्य के बाद मृतक परिवर की शुद्धिकरण हेतु भी यहीपूजा की जाती है। समाज में प्रचलित लांप्रा पूजा को हम निम्न प्रकार से समझ सकतेहैं-

(क) महिलाके गर्भ धारण करते ही माँ और शिशु के स्वास्थ्य एवं उनकी मंगल कामना करते हुए सबसेपहले लांप्रा पूजा की जाती है। शिशु जन्म के बाद माँ के स्वस्थ एवं शुद्ध होते

[1]पूजा का नाम

[2]शुद्धिकरण हेतु की जाने वाली पूजा

हीदोनों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की कामना करते हुए और शिशु को सूर्य देवता कादर्शन कराने के लिए लांप्रा पूजा दी जाती है।

(ख) जनजाति समुदाय में लांप्रा पूजा के बाद हीशादी-विवाह की प्रस्तुति ली जाती है। यहाँ तक कि लांप्रा पूजा के बाद ही वर-वधु कीखोज शुरू की जाती है। वर-वधु चयन होने पर विवाह की तैयारी भी लांप्रा पूजा संपन्न करके ही की जाती है। शुभ विवाह के दिन लांप्रा पूजा के बाद ही वर-वधु फेरे लेतेहैं और विवाह के बाद लांप्रा पूजा संपन्न होने पर ही वधु हरसिनि (पग फेरे) के लिएजाती है।

(ग) परिवारमें किसी की मृत्यु होने पर बेटियाँ तीन दिन बाद और बेटे तेरहवें दिन में लांप्रापूजा करते हैं। श्राद्ध केबाद घर की शुद्धिकरण के लिए, मृतक की अस्थि विसर्जन केपूर्व और पिंडदान के लिए तीर्थयात्रा पर जाने से पूर्व यह पूजा की जाती है।

(घ) बाबागरिया की पूजा में शामिल होने से पहले 'बुइसू' के दिन और सात दिनों तक पूजा मेंशामिल होकर घर लौटने के बाद, इसके अतिरिक्त किसी भी सामुदायिक बड़ी पूजा में भागलेने से पहले लांप्रा पूजा अनिवार्य माना जाता है।

(ङ) नयाघर बनाने से पहले भूमि पूजा, घर निर्माण के बाद गृह-प्रवेश के दिन, राज्य से बाहरयात्रा पर जाने से पहले यानी लम्बी यात्रा करने से पहले, तीर्थ यात्रा से पहले,शिकार पर जाने से पहले लांप्रा पूजा अनिवार्य माना जाता है। इसके अलावा यदि कोईपरिवार जरूरी समझते हैं तो महीने में एक बार पारिवारिक सुरक्षा एवं पवित्रता बनाएरखने के लिए यह पूजा की जाती है।

गाँव केअचाई/पुजारी द्वारा यह पूजा संपन्न की जाती है। मुख्य रूप से छः देवी-देवताओं,यथा-आकाथा, बिकाथा, तोयबुकमा, साङग्रङ, सुकून्द्राई एवं मुकून्द्राई को स्मरण करयह पूजा की जाती है। पूजा सामग्री हैं- केले के पत्ते, केले, चावल, चीनी, बताशे औरकुछ फूल आदि।

बिजू पर्व:

बिज़ू चाकमा समुदाय द्वारा नव वर्ष के अवसर पर मनाया जाने वाला एकमहत्वपूर्ण सामाजिक-धार्मिक त्योहार है। पारंपरिक रूप से यह पर्व प्रत्येक वर्ष 12 से 14 अप्रैल के आसपास मनाया जाता है। चाकमा समुदाय द्वारा यह पर्व भारत औरबांग्लादेश दोनों में मनाया जाता है। तीन दिवसीय इसलोकोत्सव में कृषि मौसम की शुरुआती फसल का जश्न मनाया जाता है। इसमें मुख्य रूप से तीन चरण होते हैं-

फूल बिजू: पर्व के पहले दिन, चाकमा समुदाय के लोगसुबह-सुबह फूल इकट्ठा करते हैं, उसके बाद फूलों से नदी घाट को सजाते हैं और फूलोंको नदी में चढ़ाते हैं।

मूल बिजू: यह त्यौहार कादूसरा दिन होता है, जिसमें लोग अलग-अलग सांस्कृतिकगतिविधियों में हिस्सा लेते हैं, जिसमें खेल औरपारंपरिक नृत्य शामिल हैं।
नि-पोज़ु: यह नए साल का दिन होताहै। यह लोकपर्व चाकमा समाज के जीवन और समृद्ध परंपराओं का उत्सव है। त्रिपुरामें, यह त्योहार एकमहत्वपूर्ण सांस्कृतिक पर्व है और इसे उत्सवपूर्ण माहौल में मनाया जाता है,जिसमें लोग एक दूसरे के घरों में जाकर बधाई देते हैं। यह उत्सव पर्यावरण के साथ चाकमा समाज केगहरे जुड़ाव को भी दर्शाता है।

सांग्राइन उत्सव:
मोग, त्रिपुरा की प्रमुख जनजातियों मेंसे एक है, जो मुख्य रूप से बौद्ध धर्म को मानते हैं। उनका सबसे महत्वपूर्ण लोकपर्व सांग्राइन है। बौद्ध परंपरा से जुड़ा यह उत्सव नववर्ष के स्वागत के रूप में मनाया जाताहै। इसमें धार्मिक अनुष्ठान, नदी स्नान, लोकनृत्य और सामूहिक भोजआदि का आयोजन किया जाता है। साथ ही समुदाय के युवा लड़के-लड़कियाँ सामुहिक जल-क्रीड़ा में भाग लेते हैं। युवा अपने सिर पर पवित्र वृक्ष की शाखाएं लेकर घूमतेहैं। प्रकृति पूजा का यह अनूठा उदाहरण है।सांग्राइन के अलावा, मोग समुदाय में वाचो, वाग्ये ला महोत्सव, बुद्ध पूर्णिमाआदि (Buddhism related festivals), जैसे कई अन्य त्योहार भीमनाया जाता है।

वाचो:
मोग समुदाय द्वारा यह त्यौहार भारतीय पंचांग के अनुसार जून या जुलाई महीनेमें मनाया जाता है। इस दौरान बौद्ध मंदिरों में विशेष पूजा की जाती है। और गाँव केभिक्षुओं को भी विशेष अनुशासन, जीवन-पद्धति अपनानी होती है, जैसे-भिक्षुक दिन मेंमंदिर से बाहर जाकर अपना काम कर सकता है, लेकिन उन्हें रात्रि विश्राम के लिए अपनेही मंदिर में लौटना अनिवार्य है। भिक्षुओं की वरिष्ठता वाचो की संख्या से तय होतीहै, न कि उम्र से। उदाहरण के लिए यदि कोई भिक्षुक 16 बार वाचो करचुका है, तो वह उन भिक्षुओं से वरिष्ठ माना जाएगा, जिन्होंने केवल 13 या 14 वाचो किए। वाचो के आरम्भ होने से लेकर तीन महीनेतक (वाग्ये ला) तक समुदाय में विवाह निषिद्ध है। यदि कोई इस दौरान विवाह करता हैतो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है या शुद्धिकरण का अनुष्ठान करना पड़ता है।

वाग्ये:
यह पूजा मोग जनजाति द्वारा अक्टूबर महीने में लक्ष्मी पूजा के एक दिन बादया कभी-कभी उसी दिन की जाती है। इस दिन गाँव के लोग मंदिरों में जाकर प्रार्थना,धार्मिक अनुष्ठान, पंचशील का पालन, शुद्धिकरण, दान-पुण्य, क्षमा-याचना जैसे कार्यकरते हैं। इस दिन से वाचो (संयम के नियम) का नियम समाप्त माना जाता है। पर्व केदौरान ग्रामीण

एक-दूसरे को मिठाइयाँ बाँटते है, सामूहिक भोज का आयोजन आदि करतेहैं। भिक्षुक भी अपने आस-पास के मंदिरों की यात्रा के लिए निकलते हैं। इसी दिन सेविवाह आदि शुभ कार्य आरंभ माना जाता है, जो अगली वाचो तक चलते हैं।

उक्त उल्लेखित जनजातीय लोकपर्वों मेंकुछ समान विशेषताएँ हैं, जैसे-

- सामूहिक श्रम और सहभागिता के कारण प्रत्येकपर्व में हर एक व्यक्ति की सक्रिय भागीदारी होती है।
- प्रत्येक त्यौहार में लोकनृत्य, लोकगीत आदि के सामूहिकप्रदर्शन के कारण वाद्ययंत्र और पारंपरिक वेशभूषा संरक्षित रहती है।
- उक्त सामुदायिक उत्सवों के माध्यम से युवा पीढ़ीपरंपराओं को सीखती है।
- प्रकृति और धर्म का संगम: देवी-देवताओं की पूजाके साथ पर्यावरणीय संवेदनशीलता का संदेश मिलता है।

उक्त पर्वों के अवसर पर पारंपरिक वेशभूषा, लोकवाद्य, लोकगीत और लोकनृत्य जनजातीय संस्कृति की जीवंतता को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार लोक पर्व-उत्सव त्रिपुरा की जनजातीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संवर्धन के महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

14.6 लोकाचार एवं अंधविश्वास

लोकाचार किसी समाज के पारंपरिक व्यवहार, रीति-रिवाज और सामाजिक मानदंडों का समूह होता है। त्रिपुरा की जनजातियों में लोकाचार जीवन के प्रत्येक चरण- जन्म, नामकरण, विवाह, मृत्यु तथा अन्य सामाजिक अवसरोंसे जुड़े हुए हैं। ये लोकाचार समाज में अनुशासन, सामुदायिक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जन्म के अवसर पर विभिन्न जनजातियों में शिशु और माता की सुरक्षा के लिए विशेष अनुष्ठान किए जाते हैं। कुछ समुदायों में जन्म के बाद निश्चित अवधि तक बाहरी व्यक्तियों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया जाता है। नामकरण संस्कार भी पारंपरिक रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न किया जाता है।

विवाह जनजातीय समाज का एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्कार है। त्रिपुरी, जमातिया और रियांग समुदायों में विवाह संबंधी विशिष्ट परंपराएँ देखने को मिलती हैं। विवाह केवल दो व्यक्तियों का नहीं, बल्कि दो परिवारों का सामाजिक और सांस्कृतिक संबंध माना जाता है। विवाह समारोह में गीत, नृत्य और सामुदायिक भोज का विशेष महत्व होता है।

मृत्यु से संबंधित लोकाचार भी जनजातीय संस्कृति का महत्वपूर्ण भाग हैं। अधिकांश जनजातियाँ यह विश्वास करती हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व बना

रहता है। इसलिए मृतक की आत्मा की शांति और पूर्वजों के प्रति सम्मान व्यक्त करने हेतु विभिन्न अनुष्ठान किए जाते हैं।

लोकाचारों के साथ-साथ कुछ अंधविश्वास भी जनजातीय समाज में प्रचलित रहे हैं। अनेक समुदायों में शुभ-अशुभ संकेतों से संबंधित मान्यताएँ पाई जाती हैं। यात्रा आरंभ करने से पहले पक्षियों की आवाज़, पशुओं की गतिविधियों अथवा विशेष प्राकृतिक घटनाओं को संकेत के रूप में देखा जाता है। कुछ बीमारियों को अलौकिक शक्तियों का प्रभाव मानकर ओझा या पारंपरिक उपचारकों की सहायता ली जाती थी।

यद्यपि आधुनिक शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रभाव से अनेक अंधविश्वासों में कमी आई है, फिर भी कुछ मान्यताएँ सांस्कृतिक परंपरा के रूप में आज भी विद्यमान हैं। इनका अध्ययन जनजातीय समाज की मानसिकता, सांस्कृतिक धारणाओं और ऐतिहासिक अनुभवों को समझने में सहायक होता है।

14.7 खान-पान

त्रिपुरा की जनजातीय संस्कृति में खान-पान केवल भोजन ग्रहण करने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन, पर्यावरणीय परिस्थितियों और सांस्कृतिक परंपराओं का अभिन्न अंग है। यहाँ की खाद्य संस्कृति स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों तथा पारंपरिक ज्ञान पर आधारित है।

चावल जनजातीय समुदायों का मुख्य भोजन है। इसके साथ विभिन्न प्रकार की हरी सब्जियाँ, जंगली साग, बाँस के कोमल अंकुर, मछली तथा मांस का व्यापक उपयोग किया जाता है। भोजन की तैयारी में स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता है।

त्रिपुरा के जनजातीय भोजन की पहचान 'मुई बरक' से होती है, जिसका अर्थ है 'जनजातीय लोगों का भोजन'। मुई बरक में अनेक पारंपरिक व्यंजन शामिल हैं, जिनमें स्थानीय स्वाद और पोषण का समन्वय दिखाई देता है। इस भोजन संस्कृति की सबसे विशिष्ट विशेषता 'बेरमा' का उपयोग है। बेरमा एक प्रकार की किण्वित सूखी मछली है, जिसका प्रयोग विभिन्न व्यंजनों में स्वाद बढ़ाने के लिए किया जाता है।

मोसोदेंग, चाखुई, गुदक तथा बाँस के अंकुरों से बने व्यंजन जनजातीय भोजन के लोकप्रिय उदाहरण हैं। मोसोदेंग एक तीखी चटनी है, जबकि चाखुई बाँस के अंकुर और बेरमा से तैयार किया जाने वाला पारंपरिक व्यंजन है। गुदक मिश्रित सब्जियों और स्थानीय मसालों से बनाया जाता है।

पारंपरिक उत्सवों और सामाजिक अवसरों पर सामूहिक भोज का विशेष महत्व होता है। गरिया पूजा तथा अन्य उत्सवों में सामुदायिक भोजन सामाजिक एकता और सहयोग

की भावना को सुदृढ़ करता है। भोजन के माध्यम से सामाजिक संबंधों को भी मजबूत किया जाता है।

वर्तमान समय में आधुनिक खाद्य आदतों का प्रभाव बढ़ा है, फिर भी जनजातीय समुदाय अपनी पारंपरिक खाद्य संस्कृति को संरक्षित रखने का प्रयास कर रहे हैं। यह खाद्य परंपरा त्रिपुरा की सांस्कृतिक पहचान तथा स्थानीय जैव-विविधता के संरक्षण का भी महत्वपूर्ण माध्यम है।

14.8 जनजातीय समाज की ज्ञान परंपरा

जनजातीय समाज में ज्ञान-परंपरा एक जीवंत, गतिशील और अनुभव-आधारित प्रक्रिया के रूप में विकसित होतीहै, जो लिखित ग्रंथों के बजाय जीवन-व्यवहार, स्मृति और मौखिक परंपराओं के माध्यम से संरक्षित रहती है। यह ज्ञान केवलसूचना या तकनीक तक सीमित नहीं होता, बल्कि इसमें प्रकृति कीसूक्ष्म समझ, सामाजिक आचरण के नियम, नैतिकमूल्य और आध्यात्मिक विश्वास भी समाहित होते हैं। त्रिपुरा के जनजातीय समुदायोंमें यह परंपरा दैनिक गतिविधियों- जैसे कृषि, वनोपज संग्रह,आवास निर्माण और स्वास्थ्य-देखभाल में सहज रूप से अभिव्यक्त होतीहै। जैसे- मौसम के परिवर्तन, पौधों की वृद्धि या पशु-पक्षियोंके व्यवहार के आधार पर निर्णय लेना इस ज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता को दर्शाताहै। इसी प्रकार जड़ी-बूटियों के चयन, भोजन की विविधता औरसंसाधनों के संतुलित उपयोग में भी पीढ़ियों से संचित अनुभव निहित होता है। ज्ञानका संप्रेषण प्रायः बुजुर्गों द्वारा कथाओं, अनुष्ठानों औरप्रत्यक्ष अभ्यास के माध्यम से अगली पीढ़ी को किया जाता है, जिससेयह परंपरा निरंतरता बनाएरखती है। इस दृष्टि से त्रिपुरा की जनजातीय ज्ञान-परंपराको एक समग्र ज्ञान-प्रणाली के रूप में समझा जा सकता है, जिसमेंउपयोगिता, सांस्कृतिक अर्थ और सामुदायिक अनुभव का संतुलितसमावेश होता है।

14.8.1 लोक-चिकित्सा और पारंपरिक औषधीय ज्ञान

त्रिपुरा के जनजातीय समाज में लोक-चिकित्सा केवल उपचार की पद्धति नहीं, बल्कि जीवन-ज्ञान, प्रकृति-बोध और सामुदायिक अनुभवों का समन्वित रूप है। यह औषधीय ज्ञानपीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपरा और व्यवहारिक अभ्यास के माध्यम से संचित एवं संरक्षितहोता आया है। जनजातीय समुदायों में रोगों के उपचार के लिए वनस्पतियों, जड़ों, छाल, पत्तियों तथाप्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाता है, जिसमें स्थानीयपर्यावरण की गहरी समझ परिलक्षित होती है। इस ज्ञान-प्रणाली में रोग के लक्षण,उसके कारण और उपचार के साथ-साथ व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक अवस्थाको भी ध्यान में रखा जाता है।उदाहरण के रूप में बुखार या सर्दी-जुकाम के उपचार हेतु विशेष जड़ी-बूटियोंका काढ़ा तैयार किया जाता है, जिसमें तुलसी, अदरक या

स्थानीय औषधीय पत्तियों काप्रयोग होता है। स्थानीय चिकित्सा की दृष्टि से जनजातीय समाज में 'चुवां' का भीविशेष स्थान है। यह एक विशेष प्रकार की जड़ी-बूटियों, मसालों तथा स्टिकी राइस केमिश्रण से तैयार किया जाता है। इसकी छोटी-छोटी टिकिया बनाकर उन्हें सुखाया जाता हैऔर हर घर में संरक्षित रखा जाता है। इसका प्रयोग विशेष रूप से हड्डी टूटने या मोचलगने की स्थिति में किया जाता है। चुवां की टिकिया को पीसकर उसका पाउडर पानी केसाथ हल्का गर्म कर लिया जाता है, जिसे मोच वाले स्थान या हड्डी से प्रभावित हिस्सेपर लगाया जाता है। शरीर में लगातार दर्द या टूटन रहने पर भी चुवां से मालिश कीजाती है। चिरौता की पत्तियों का प्रयोग बुखार में किया जाता है। सर्दी और खाँसीजैसी समस्याओं से राहत पाने के लिए श्यामा और हरी तुलसी की पत्तियों का सेवन कियाजाता है। इसी प्रकार बांदार, खुंद्रुपोई, बड़ी धनिया और नींबू की पत्तियों को एक साथपीसकर सेवन करने से वात एवं पित्त से संबंधित समास्याओं में लाभ मिलता है।

त्वचा संबंधी रोगों या घावों के लिए पेड़ों की छाल या पत्तियों का लेपलगाया जाता है, जो संक्रमण को रोकनेमें सहायक होता है। उदाहरण के लिए दग्दु राजा और फाग्रांग की पत्तियों का प्रयोगखुजली, एलर्जी आदि को ठीक करने के लिए किया जाता है, जबकि पाथर कुची की पत्तियोंका सेवन पथरी को गलाने या उसे शरीर से बाहर निकालने के लिए किया जाता है।

इसी प्रकार पेट संबंधी समस्याओं के लिए अमरुद की पत्तियाँ, कड़वी जड़ों यावनस्पतियों का सेवन कराया जाता है, जो पाचन क्रिया को संतुलित करती हैं। इन उपचार विधियों कीविशेषता यह है कि ये स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों पर आधारित होती हैं और इनकेदुष्प्रभाव अपेक्षाकृत कम होते हैं।

त्रिपुरा के जनजातीय समाज में ओझा, पारंपरिक वैद्य इस ज्ञान के प्रमुख संरक्षक और संवाहक होतेहैं। वे न केवल औषधियों की पहचान और उपयोग में दक्ष होते हैं, बल्कि रोगों के निदान में भी अनुभवजन्य कौशल का परिचय देते हैं। कई बारउपचार प्रक्रिया में आध्यात्मिक और सांस्कृतिक तत्व भी जुड़े होते हैं, जैसे मंत्रोच्चार या अनुष्ठान, जो रोगी के मानसिकसंतुलन और विश्वास को सुदृढ़ करते हैं। यह समग्र दृष्टिकोण उपचार को केवल शारीरिकस्तर तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे मानसिक और सामाजिकआयामों से भी जोड़ता है।

विशेष रूप से दूरस्थ और वन क्षेत्रों में, जहाँ आधुनिक चिकित्सा सुविधाएँ सीमित हैं, यह लोक-चिकित्सा पद्धति आज भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। उदाहरण केलिए प्रसव के दौरान पारंपरिक दाइयों द्वारा जड़ी-बूटियों और स्थानीय तकनीकों काउपयोग सुरक्षित प्रसव सुनिश्चित करने में सहायक होता है। इसी प्रकार, विषैले कीट या साँप के काटने पर त्वरित उपचार के लिए पारंपरिक ज्ञान कासहारा लिया जाता है, जो कई बार जीवन-रक्षक सिद्ध होता है।हालाँकि, बदलती जीवन-शैली,आधुनिक चिकित्सा के प्रसार

और नई पीढ़ी की घटती रुचि के कारण यहज्ञान-परंपरा धीरे-धीरे लुप्त होने के कगार पर है। इसलिए आवश्यक है कि इस पारंपरिकऔषधीय ज्ञान का वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण, संरक्षण और संवर्धनकिया जाए। साथ ही, इसे आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों के साथ समन्वितकर एक समग्र स्वास्थ्य-प्रणाली के रूप में विकसित किया जा सकता है। इस दृष्टि सेत्रिपुरा के जनजातीय समाज की लोक-चिकित्सा न केवल सांस्कृतिक धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण संसाधन सिद्ध हो सकतीहै।

14.8.2 झूम कृषि पद्धति

त्रिपुरा के जनजातीय समाज में झूम कृषि एक पारंपरिक, सामुदायिक और पारिस्थितिक संतुलन परआधारित पद्धति के रूप में विकसित हुई है, जिसे केवल उत्पादनका साधन नहीं, बल्कि जीवन-व्यवस्था का हिस्सा माना जाता है।इस पद्धति में वन क्षेत्र के एक हिस्से को सीमित रूप से साफ कर अस्थायी रूप सेखेती की जाती है और कुछ वर्षों बाद उसे पुनः प्राकृतिक रूप से विकसित होने के लिएछोड़ दिया जाता है, जिससे भूमि की उर्वरता बनी रहती है। झूमकृषि की विशेषता इसकी मिश्रित फसल प्रणाली है, जिसमें धान,मक्का, दालें, सब्जियाँ,कपास, तिल,अदरक, हल्दी, मिर्ची और फूल-फलों के पेड़ एक साथ उगाए जाते हैं। जो नकेवल भूमि के संतुलित उपयोग को सुनिश्चित करता है, बल्किखाद्य विविधता और पोषण सुरक्षा को भी बढ़ाता है। इस पूरी प्रक्रिया में सामुदायिकश्रम, पारंपरिक ज्ञान और प्रकृति के साथ संतुलित संबंधस्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

महत्वपूर्ण बिंदु:

त्रिपुरा की लोक-संस्कृति अपनी जनजातीय परंपराओं, लोकविश्वासों, पर्व-उत्सवों और सामुदायिक जीवन के कारण अत्यंत समृद्ध मानी जाती है। यहाँ त्रिपुरी, जमातिया, रियांग, चाकमा, मोग आदि जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनकी अपनी विशिष्ट भाषा, रीति-रिवाज और सांस्कृतिक पहचान है। त्रिपुरा की संस्कृति प्रकृति-पूजा और सामुदायिक सहयोग पर आधारित है। गरिया पूजा, खार्ची पूजा, केर पूजा, बिजू और सांग्राइन जैसे पर्व सामाजिक एकता तथा धार्मिक आस्था के प्रतीक हैं।

होजागिरी और लेबांग बूमानी जैसे लोकनृत्य राज्य की सांस्कृतिक जीवंतता को अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ का पारंपरिक भोजन "मुई बोरोक"कहलाता है, जिसमें चावल, बाँस के अंकुर, मछली तथा बेरमा का विशेष महत्व है। त्रिपुरा की मौखिक परंपराएँ, लोककथाएँ, लोकगीत, झूम कृषि, लोक-चिकित्सा तथा बाँस-बेंत शिल्प उसकी ज्ञान-परंपरा को समृद्ध बनाते हैं। आधुनिकता के प्रभाव के बावजूद जनजातीय समुदाय अपनी संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण के लिए निरंतर प्रयासरत हैं।

14.8.3 मौखिक परंपरा

मौखिक परंपराएँ जनजातीय समाज में ज्ञान के संरक्षण और प्रसार का प्रमुखमाध्यम हैं, जिनके माध्यम सेइतिहास, जीवन-मूल्य, प्रकृति-बोध औरसामाजिक नियम पीढ़ी-दर-पीढ़ी सहज रूप में संप्रेषित होते हैं। लिखित परंपरा केअभाव में लोककथाएँ, लोकगीत, मिथक,कहावतें और अनुष्ठानिक वाचन ही ज्ञान के जीवित भंडार का कार्य करतेहैं। त्रिपुरा के जनजातीय समुदायों में बुजुर्ग पीढ़ी बच्चों और युवाओं को कथाओंऔर गीतों के माध्यम से जीवन के व्यावहारिक और नैतिक पक्षों से परिचित कराती है। उदाहरण के लिए अनेक लोककथाओं में यह संदेश निहित होता है कि प्रकृति के साथअसंतुलित व्यवहार अंततः विनाश का कारण बनता है, जिससेपर्यावरण संरक्षण की भावना विकसित होती है। इसी प्रकार कृषि-गीतों में बुवाई,कटाई और ऋतु-चक्र से जुड़ी सूचनाएँ और अनुभव निहित रहते हैं,जो नई पीढ़ी को व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करते हैं। विवाह, उत्सव और धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान गाए जाने वाले गीतों में सामाजिकसंबंधों, परंपराओं और सामुदायिक मर्यादाओं का चित्रण मिलताहै। इस प्रक्रिया में ज्ञान केवल सूचना के रूप में नहीं, बल्किअनुभव, भाव और सामूहिक स्मृति के रूप में संचित होता है। इसप्रकार मौखिक परंपराएँ जनजातीय समाज की सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने केसाथ-साथ उनके ज्ञान-संसार कोजीवंत और गतिशील बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्णभूमिका निभाती हैं। उदाहरण के लिए कृषि संबंधित एक गीत प्रस्तुत है-

माघ
के आधा बीतते-बीतते
तकसाकुमा पक्षी बोल उठा है
फाल्गुन का आभास पाकर
फाल्गुन के आधा बीतते-बीतते
माजिबिलातो फूल झड़ने लगा है
खुम मायकाई में कलियाँ आ गयी
चैत का आभास पाकर
गरिया पूजा आने वाली है
चैत के बाद वैशाख आएगा
तो धान बोना!
सेना और बुइसु के बीच
लक्ष्मी पूजा होगी ।
उपजाऊ, ढलानों में गुरिया धान
बोना

बहुत पसंद है, बच्चों को
पूर्व की ढलानों में मामि वातलक धान बोना.....

14.8.4 शिल्पकला: बुनाई और हस्तकला

त्रिपुरा की जनजातीय ज्ञान परंपरा में बुनाई विशेषरूप से पारंपरिक वेशभूषा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह केवल वस्त्र निर्माणकी कला नहीं, बल्कि सांस्कृतिकपहचान, सामाजिक गरिमा और ऐतिहासिक निरंतरता का प्रतीक है।जनजातीय समुदायों में प्रत्येक पारंपरिक परिधान जैसे- महिलाओं के लिए रिनाई-रिसाऔर पुरुषों के लिए पारंपरिक वस्त्र अपने विशिष्ट रंगों, डिज़ाइनोंऔर पैटर्न के माध्यम से किसी विशेष जनजाति, आयु, वैवाहिक स्थिति तथा सामाजिक अवसरों को अभिव्यक्त करते हैं। बुनाई की यहकला मुख्यतः महिलाओं द्वारा सीखी और सिखाई जाती है, जो पीढ़ीदर पीढ़ी हस्तांतरित होकर जीवंत बनी रहती है। इसमें प्रयुक्त रंग और आकृतियाँप्रकृति, उत्सवों और सामुदायिक जीवन से प्रेरित होती हैं,जो जीवन के साथ गहरे जुड़ाव को दर्शाती हैं। पारंपरिक वेशभूषा नकेवल सांस्कृतिक गौरव का स्रोत है, बल्कि आत्मनिर्भरता औरआर्थिक सशक्तिकरण का माध्यम भी है। अतः आवश्यक है कि नई पीढ़ी को इस बुनाई कला केमहत्व से परिचित कराकर इसे संरक्षित और प्रोत्साहित किया जाए, ताकि यह समृद्ध परंपरा भविष्य में भी अक्षुण्ण बनी रहे।

14.8.4.1 बाँस और बेंत शिल्प

त्रिपुरा की जनजातीयज्ञान परंपरा में हस्तकला का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यह केवल आजीविका का साधननहीं, बल्कि समुदाय की सांस्कृतिक पहचान, परंपरागत ज्ञान और जीवन-दर्शन का जीवंत रूप है। बाँस और बेंत से निर्मित टोकरी,चटाइयाँ और दैनिक उपयोग की अन्य वस्तुएँ स्थानीय संसाधनों के सततएवं पर्यावरण-अनुकूल उपयोग को दर्शाती हैं। इनकी पारंपरिक तकनीकें, विशिष्ट डिज़ाइन और रंगों का चयन पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपरा औरव्यवहारिक अभ्यास के माध्यम से हस्तांतरित होता आया है, जिनमेंसामाजिक मान्यताएँ, उत्सवों की झलक और जनजातीय इतिहास भीनिहित रहता है। इस कला में सामूहिक श्रम, धैर्य, सृजनशीलता और आत्मनिर्भरता के मूल्य समाहित हैं, जोसमाज को एकजुट बनाए रखते हैं। इसलिए आवश्यक है कि नई पीढ़ियों को इस पारंपरिकज्ञान से जोड़ने के लिए शिक्षा, प्रशिक्षण और प्रोत्साहन केमाध्यम से इसे संरक्षित एवं संवर्धित किया जाए।

अपनी प्रगति जांचे :

प्रश्न 1: त्रिपुरा की लोक-संस्कृति का प्रमुख आधार क्या है?

प्रश्न 2: रियांग जनजाति का प्रसिद्ध लोकनृत्य कौन-सा है?

प्रश्न 3: 'बेरमा' क्या है?

प्रश्न 4: त्रिपुरा की जनजातीय समाज-व्यवस्था की प्रमुख विशेषता क्या है?

प्रश्न 5: झूम कृषि का मुख्य उद्देश्य क्या है?

14.9 समाज-व्यवस्था

त्रिपुरा की जनजातीय समाज-व्यवस्था सामुदायिक सहयोग, पारिवारिक संबंधों और पारंपरिक सामाजिक संस्थाओं पर आधारित है। जनजातीय समाज में व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय को अधिक महत्व दिया जाता है। सामूहिक जीवन, पारस्परिक सहयोग और सामाजिक उत्तरदायित्व इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

परिवार जनजातीय समाज की मूल इकाई है। अधिकांश समुदायों में संयुक्त परिवार की परंपरा प्रचलित रही है, यद्यपि आधुनिकता के प्रभाव से एकल परिवारों की संख्या बढ़ रही है। परिवार सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक परंपराओं और लोकज्ञान के हस्तांतरण का प्रमुख माध्यम है।

त्रिपुरा की विभिन्न जनजातियों में पारंपरिक सामाजिक संस्थाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उदाहरणस्वरूप, जमातिया समुदाय की हदा संस्था सामाजिक अनुशासन और सांस्कृतिक संरक्षण का कार्य करती है। इसी प्रकार त्रिपुरी, देबबर्मा, रियांग, कलई, उचई आदि जनजातियों में भी परंपरागत ग्राम परिषदें और सामुदायिक नेतृत्व व्यवस्था विद्यमान रही हैं।

ग्राम समुदाय जनजातीय समाज का केंद्र होता है। गाँव के महत्वपूर्ण निर्णय सामूहिक विचार-विमर्श द्वारा लिए जाते हैं। सामाजिक विवादों के समाधान, सामुदायिक कार्यों के संचालन तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के आयोजन में ग्राम नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।जनजातीय समाज में महिलाओं की भूमिका भी उल्लेखनीय है। कृषि, घरेलू कार्यों, हस्तशिल्प तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहता है। विशेषकर रियांग समुदाय की महिलाओं द्वारा प्रस्तुत होजागिरी नृत्य उनकी सांस्कृतिक सक्रियता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

शिक्षा, शहरीकरण और आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्थाओं के प्रभाव से जनजातीय समाज में अनेक परिवर्तन आए हैं। फिर भी सामुदायिक सहयोग, पारंपरिक नेतृत्व और सांस्कृतिक मूल्यों की भावना आज भी जनजातीय जीवन का आधार बनी हुई है। यही विशेषताएँ त्रिपुरा की जनजातीय समाज-व्यवस्था को विशिष्ट बनाती हैं और उसकी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखती हैं।

14.10 सारांश

त्रिपुरा की लोक-संस्कृति राज्य की जनजातीय परंपराओं, लोकविश्वासों, पर्व-उत्सवों, सामाजिक संस्थाओं, ज्ञान-परंपराओं तथा सामुदायिक जीवन पर आधारित एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। प्राकृतिक सौंदर्य, जनजातीय विविधता और सांस्कृतिक समन्वय ने यहाँ एक विशिष्ट लोकजीवन का निर्माण किया है। त्रिपुरा की सांस्कृतिक पहचान मुख्यतः त्रिपुरी, जमातिया, रियांग (ब्रू), चाकमा, मोग, नोवातिया, उचई, हालाम आदि जनजातीय समुदायों की परंपराओं से निर्मित हुई है।यहाँ के लोकविश्वास प्रकृति, देवी-देवताओं, पूर्वजों तथा अदृश्य शक्तियों के प्रति आस्था पर आधारित हैं। पर्वत, वन, नदियाँ और अन्य प्राकृतिक तत्व जनजातीय धार्मिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग हैं। लोककथाएँ, मिथक और दंतकथाएँ सांस्कृतिक मूल्यों तथा सामुदायिक स्मृतियों के संरक्षण का कार्य करती हैं।

त्रिपुरा के लोक पर्व-उत्सव सांस्कृतिक जीवन की जीवंत अभिव्यक्ति हैं। खार्ची पूजा, गरिया पूजा, केर पूजा, होजागिरी, लांप्रा पूजा, बिजू, सांग्राइन, वाचो और वाग्ये जैसे उत्सव धार्मिक आस्था, कृषि-समृद्धि, प्रकृति-पूजा और सामाजिक एकता के प्रतीक हैं। इन पर्वों के अवसर पर लोकगीत, लोकनृत्य, पारंपरिक वेशभूषा और सामूहिक भोज सामाजिक समरसता को सुदृढ़ करते हैं।

लोकाचार जनजातीय समाज के जीवन-चक्र से जुड़े संस्कारों-जन्म, विवाह, मृत्यु तथा अन्य सामाजिक अवसरोंको नियंत्रित करते हैं। इनके साथ कुछ पारंपरिक अंधविश्वास भी जुड़े रहे हैं, जो समाज की सांस्कृतिक धारणाओं और ऐतिहासिक अनुभवों को अभिव्यक्त करते हैं।

त्रिपुरा की खाद्य संस्कृति स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान पर आधारित है। चावल, बाँस के अंकुर, मछली, मांस तथा 'बेरमा' जैसे खाद्य पदार्थ यहाँ के भोजन की विशिष्ट पहचान हैं। मुई बोरोक जैसी पारंपरिक खाद्य परंपराएँ जनजातीय जीवन और सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

जनजातीय ज्ञान-परंपरा अनुभवजन्य तथा मौखिक परंपराओं पर आधारित है। लोक-चिकित्सा, झूम कृषि, मौखिक साहित्य, बुनाई, बाँस एवं बेंत शिल्प आदि इसके प्रमुख आयाम हैं। जड़ी-बूटियों पर आधारित उपचार पद्धतियाँ, पारंपरिक कृषि ज्ञान और लोकगीतों में निहित जीवनानुभव जनजातीय समाज की ज्ञान-संपदा को अभिव्यक्त करते हैं।

त्रिपुरा की समाज-व्यवस्था सामुदायिक सहयोग, पारिवारिक संबंधों और पारंपरिक संस्थाओं पर आधारित है। ग्राम-समाज, सामूहिक निर्णय, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सांस्कृतिक अनुशासन इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभावों के बावजूद जनजातीय समुदाय अपनी सांस्कृतिक पहचान, भाषाओं, लोककलाओं और

परंपराओं के संरक्षण के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। त्रिपुरा की लोक-संस्कृति प्रकृति, परंपरा, सामुदायिक जीवन और सांस्कृतिक समन्वय का एक जीवंत स्वरूप है, जो राज्य की ऐतिहासिक चेतना, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक अस्मिता को समझने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

14.11 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न संख्या 1 का उत्तर: त्रिपुरा की लोक-संस्कृति का प्रमुख आधार उसकी जनजातीय परंपराएँ, सामुदायिक जीवन और प्रकृति-पूजा है।

प्रश्न संख्या 2 का उत्तर: रियांग जनजाति का प्रसिद्ध लोकनृत्य होजागिरी है।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर: बेरमा एक प्रकार की किण्वित सूखी मछली है, जिसका उपयोग त्रिपुरा के पारंपरिक व्यंजनों में स्वाद बढ़ाने के लिए किया जाता है।

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर: त्रिपुरा की जनजातीय समाज-व्यवस्था सामुदायिक सहयोग, पारस्परिक सम्मान और सामूहिक निर्णय पर आधारित है।

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर: झूम कृषि का मुख्य उद्देश्य भूमि की उर्वरता बनाए रखते हुए पारंपरिक और संतुलित कृषि व्यवस्था को बनाए रखना है।

14.12 अधिक जानने के लिए पढ़ें

- जमातिया.मिलनरानी, त्रिपुरा की लोककथाएँ, नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन
- पूर्वोत्तर सृजन पत्रिका (हिंदी ई पत्रिका)
- दास. डॉ.निर्मल, प्रसंग लोकसंस्कृति उ त्रिपुरा, अगरतला:अक्षर पब्लिकेशन
- राय. अरुंधती, तिपुरार उपजाति लोककथा:समाज उ रूपतत्व, अगरतला, त्रिपुरा
- देबबर्मा.श्यामलाल, कॉकबरक साहित्य उ संस्कृति, अगरतला:बानी प्रकाशन
- गुप्ता, रमणिका: उत्तर-पूर्व भारत: समाज और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- शर्मा, रामशरण: भारत की जनजातीय संस्कृति: उत्तर-पूर्व भारत, मेश्नल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2013
- डॉ. देवराज, 'पूर्वोत्तर में हिंदी : सांस्कृतिक आधार और वर्तमान स्थिति', इन्द्रप्रस्थ भारती, अंक- ६, सितम्बर २०१९, हिंदी अकादमी दिल्ली

14.13 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. कॉकबरक भाषा किस जनजाति की प्रमुख भाषा है?
2. होजागिरी नृत्य किस जनजाति से संबंधित है?
3. मुई बरक का क्या अर्थ है?
4. झूम कृषि क्या है?
5. बिजू पर्व किस समुदाय द्वारा मनाया जाता है?
6. गरिया पूजा का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

1. त्रिपुरा की जनजातीय स्थिति का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. लोकविश्वासों का जनजातीय जीवन में क्या महत्व है?
3. खार्ची पूजा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. मुई बोरोक की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
5. त्रिपुरा की मौखिक परंपराओं का महत्व स्पष्ट कीजिए।
6. लोक-चिकित्सा एवं पारंपरिक औषधीय ज्ञान पर टिप्पणी लिखिए।
7. त्रिपुरा की लोक-संस्कृति के प्रमुख आयामों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
8. त्रिपुरा के लोकविश्वास एवं लोकाचारों का सांस्कृतिक महत्व स्पष्ट कीजिए।
9. त्रिपुरा के प्रमुख जनजातीय पर्व-उत्सवों का वर्णन करते हुए उनके सामाजिक महत्व पर प्रकाश डालिए।
10. त्रिपुरा की जनजातीय ज्ञान-परंपरा का विस्तृत विवेचन कीजिए।



This document was created with the Win2PDF “Print to PDF” printer available at

https://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.
Visit https://www.win2pdf.com/trial/ for a 30 day trial license.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

https://www.win2pdf.com/purchase/